देवनारायण सिंह अन्य

बनाम

भागलपुर और अन्य के आयुक्त

22 अप्रैल,1997

(एस. बी. मजमुदार और एम. जगन्नाथ राव, जे. जे.)

संथाल परगना किरायेदारी (पूरक प्रावधान) अधिनियम 1949-एस 20 (1) और (5), खंड 42 संथाल परगना निपटान विनियमन, 1872-खंड 27 (1) और (3)-कानून की खंड 27 (3) के तहत भूमि हस्तांतरण के अधिकारों के हस्तांतरण को रद्द किया जा सकता था, मामले के तथ्यों से पता चलता है कि सक्षम अधिकारियों ने जांच के लिए समय लेने के बाद, और अपने विवेक का उपयोग करते हुए हस्तांतरण को नियमित किया और परिवर्तन की अनुमति दी, जिससे पहले के लेनदेन के हस्तांतरण के लिए एक प्रकाश अवैध नहीं है, बाद में उससे होने वाले लेनदेन अवैध नहीं हो सकते हैं क्योंकि न तो अधिनियम की खंड 20 (1) को फिर से लागू किया गया है और न ही कानून की निरस्त खंड 27 सक्षम अधिकारियों द्वारा पारित अंतिम आदेशों को अस्वीकार करने का प्रयास करती है।

सामान्य-खंड अधिनियम 1917-एस. 8.

एक बी, जिसे अपने भाइयों के साथ अपने ऋणों का भुगतान करने के लिए मूल रैयत नियुक्त किया गया था, ने 1939 में बी. के. को मूल रैयत में 38 एकड़ और 9 दशमलव का 8 अन्ना ब्याज बेच दिया, जिसने अधिकारियों की उचित मंजूरी के बाद राजस्व रिकॉर्ड में अपना नाम बदलवा लिया। बाद में, बी. के. ने उक्त भूमि में अपना पूरा अधिकार, स्वामित्व और ब्याज अपीलार्थियों के पिता आर. को बेच दिया, जिन्होंने राजस्व रिकॉर्ड में अपना नाम भी बदलवा लिया। फिर भी, प्रतिद्वंद्वी प्रतिवादी ने उसके कब्जे में खलल डालने की मांग की और सीआरपीसी की धारा 145 के तहत कार्यवाही शुरू की। एसडीओ ने आर. ए. के पक्ष में फैसला सुनाया। सत्र न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया गया। आर की मृत्यु पर उनके बेटे एम को मूल रैयत नियुक्त किया गया। आई. डी. 1 में, प्रतिवादी ने उक्त भूमि के मूल सह-हिस्सेदार के रूप में दावा किया और एस. डी. ओ. के समक्ष एक आवेदन दायर किया, जिसमें संथाल परगना किरायेदारी (पूरक प्रावधान) अधिनियम 1949 की धारा 42 के साथ पठित धारा 20 (5) के तहत अपीलार्थियों को बेदखल करने का अनुरोध किया गया। आवेदन की अस्वीकृति पर, एक अपील दायर की गई जिसे अनुमति दी गई और अतिरिक्त उपायुक्त द्वारा इस आधार पर बेदखली का आदेश दिया गया कि बी. के. को मूल बिक्री, संथाल परगना निपटान विनियमन, 1872 की धारा 27 (1) का उल्लंघन था और इसलिए

निम्नलिखित सभी लेनदेन अमान्य थे। जब इस आदेश की अपील खारिज कर दी गई, तो अपीलार्थी एक रिट याचिका पर उच्च न्यायालय गए। भौरी लाल जैन और एक अन्य बनाम जामताड़ा और अन्य के उप-मंडल अधिकारी, ए. आई. आर. (1973) पटना, 1 में पूर्ण न्यायालय के पहले के फैसले पर भरोसा करते हुए एक पूर्ण पीठ ने उनके मामले को खारिज कर दिया, जिस पर इस न्यायालय में अपील की गई थी।

अपील को अनुमति देते हुए, यह न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

1. बी. के. एक रैयत था जिसे विनियमन के तहत सक्षम अधिकारियों द्वारा मूट रैयत के रूप में मान्यता दी गई थी। उक्त भूमि में उसका पूरा अधिकार, अधिकार और हित, जो एक अन्य भूमि थी, अपीलार्थी के पिता के पक्ष में उक्त दूसरे लेन-देन के तहत हस्तांतरित कर दिया गया था। हस्तांतरण का अधिकार अधिकारों के अभिलेख में विधिवत दर्ज किया गया था और मूल रैयत में उनके पूरे अधिकार, शीर्षक और हित के लिए स्थानांतरण या हस्तांतरण की आवश्यकता थी। बी. के. ने 26 जून 1950 के लेनदेन द्वारा अपीलार्थियों के पिता के पक्ष में ठीक यही किया था। इसलिए, इस लेन-देन ने अधिनियम की खंड 20 (1) के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं किया। यदि ऐसा है, तो यह पूरी तरह से उक्त प्रावधान के चार कोनों के भीतर रहा और इसे किसी भी कोण से अवैध या अमान्य नहीं माना जा सकता था। नतीजतन, अधिकारियों के लिए 26 जून 1950

को बिक्री के इस बाद के लेन-देन के संबंध में अधिनियम की खंड 42 के साथ पठित खंड 20 (5) को लागू करने का कोई अवसर नहीं रहेगा। नीचे के अली अधिकारियों के साथ-साथ उच्च न्यायालय ने विवादित फैसले द्वारा 22 मार्च 1939 को बिक्री के पहले लेनदेन की अयोग्यता पर विचार किया है और इस दृष्टि से उन्होंने दूसरे लेनदेन को परिणामी लेनदेन के रूप में रद्द कर दिया है। एक बार जब दोनों बिक्री के बीच की सांठगांठ टूट जाती है और पहले के लेनदेन को किसी भी कोण से दोषपूर्ण नहीं पाया जा सकता है, तो 26 जून 1950 के दूसरे बिक्री लेनदेन के संबंध में प्रत्यर्थी-प्राधिकरणों के लिए अधिनियम की खंड 20 (1) के प्रावधानों को उप-खंड (5) और खंड 42 के साथ पढ़ने का कोई अवसर नहीं रहेगा। एक बार जब यह निष्कर्ष निकल जाता है तो परिणाम स्पष्ट हो जाता है। इन विचित्र तथ्यों पर इस निष्कर्ष से कोई बच नहीं सकता है कि मृत विक्रेता आर के उत्तराधिकारी के रूप में अपीलार्थियों का कब्जा वैध रूप से प्राप्त किया गया था और एक वैध अधिकार जो 26 जून 1950 को दूसरे बिक्री लेनदेन के तहत उनके पिता आर को 36.09 एकड़ भूमि में दिया गया था, उत्तराधिकार के नियमों द्वारा अपीलार्थियों को कानूनी रूप से प्रेषित किया गया था। नतीजतन इन तथ्यों पर अपीलार्थियों के खिलाफ अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत अधिकारियों द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती थी। [955-सी-एच; 956-ए]

2. इसमें कोई संदेह नहीं है कि 22 मार्च 1939 को बिक्री के पहले लेन-देन की सक्षम अधिकारियों और उपायुक्त द्वारा विधिवत जांच की गई थी जिन्होंने इसे मंजूरी दी थी। 31 मई 1939 से 28 दिसंबर 1939 तक कार्यवाही जांच के दायरे में रही। इस प्रकार सात महीने तक जाँच चलती रही और अंततः उपरोक्त निर्णय दिया गया। इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि उपायुक्त के लिए, यदि ऐसी सलाह दी जाती है, तो विनियमन की खंड 27 (3) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए स्थानांतरितीकर्ता को बेदखल करने का आदेश देने का पर्याप्त अवसर था, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि अपने विवेक से उन्होंने लेन-देन पर अपनी आपत्ति को माफ कर दिया था और उसे नियमित कर दिया गया था। उक्त निष्कर्ष अपरिहार्य है लेकिन उक्त तथ्य के लिए विक्रेता बी. के. के पक्ष में उत्परिवर्तन को संबंधित समय पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा कभी भी मंजूरी नहीं दी गई होगी। इसलिए, इस मामले के विशिष्ट तथ्यों पर यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि 22 मार्च 1939 को बिक्री के पहले लेन-देन को विनियमन की खंड 27 (2) के तहत शक्तियों का प्रयोग करने वाले सक्षम प्राधिकारी द्वारा विधिवत अनुमोदित और मंजूरी दी गई थी। एक बार ऐसा होने के बाद विक्रेताओं के पक्ष में अपने अधिकार में 38.09 एकड़ में हस्तांतरित भूमि के कब्जे में रहने का अधिकार अर्जित हो गया और उक्त लेन-देन पर पर्दा गिर गया। यह स्पष्ट है कि उक्त विनियमन के तहत यदि यह जारी रहता तो लेन-देन को फिर से नहीं खोला जाता जब यह

पाया जाता कि लेन-देन की सूचना रखने वाले उपायुक्त ने यह नहीं सोचा था कि यह अवैध स्थानांतरितीकर्ता को बेदखल करने के लिए विनियमन की खंड 27 (3) के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए उपयुक्त है। यह हो सकता है कि किसी दिए गए मामले में प्रासंगिक तथ्यों को उपायुक्त के ध्यान में पहले नहीं लाया गया था और यदि बाद में उन्होंने पाया था कि लेन-देन एक उचित मामले में खंड 27 की उप-खंड (1) का उल्लंघन था तो वह खंड 27 (3) के तहत शक्ति का प्रयोग कर सकते थे, लेकिन ऐसे वर्तमान मामले के तथ्य नहीं हैं। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि सात महीने बीत गए, जिसके दौरान लेन-देन उपखंड अधिकारी की जांच के दायरे में रहा और अंततः स्वयं उपायुक्त द्वारा इसकी जांच की गई। नतीजतन, इस मामले के विशिष्ट तथ्यों पर यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि उक्त लेन-देन को सक्षम प्राधिकारी द्वारा विधिवत फ़िल्टर किया गया था, जिसने अपने विवेकाधिकार पर उन्हीं वर्षों में 28 दिसंबर 1939 को मंजूरी दी थी। तदनुसार इसे विनियमन के तहत उक्त स्थानांतरिती के स्थानांतरितीकर्ता के पक्ष में अर्जित अधिकार माना जाना चाहिए। [951-8-एच; 952-ए-बी]

3. अधिनियम में प्रासंगिक प्रावधानों पर केवल एक नज़र डालने से पता चलता है कि अधिनियम में ऐसा कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है जो इसके बावजूद निर्धारित करता हो।

कोई भी अधिकार जो उक्त लेन-देन की नई जांच के तहत वहां अर्जित हो सकता है, अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत किया जा सकता है जो विनियमन की पहले निरस्त खंड 27 के अनुरूप था। जब अधिनियम की योजना से इस तरह का विपरीत इरादा प्रकट नहीं होता है, तो विनियमन की खंड 27 के निरसन का प्रभाव बिहार सामान्य खंड अधिनियम, 1917 की खंड 8 के प्रावधानों को स्पष्ट रूप से आकर्षित करता है। जैसा कि विनियमन की निरस्त खंड 27 को अधिनियम की खंड 20 (1) के रूप में फिर से अधिनियमित किया गया है और चूंकि बाद वाला अधिनियम विनियमन की निरस्त खंड 27 के तहत सक्षम अधिकारियों द्वारा दिए गए किसी भी अंतिम आदेश को समाप्त करने का कोई अलग और विपरीत इरादा नहीं दिखाता है, इसलिए अधिनियम द्वारा विनियमन की खंड 27 का निरसन उक्त निरस्त प्रावधान के तहत अर्जित, उपार्जित या उपार्जित किसी भी अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व या दायित्व को प्रभावित नहीं करेगा। परिणामस्वरूप विनियमन के तहत 22 मार्च 1939 के लेन-देन से अर्जित प्रतिरक्षा और सक्षम प्राधिकारी, अर्थात् उपायुक्त द्वारा 28 दिसंबर 1939 के अपने आदेश द्वारा दी गयी मंजूरी अधिनियम द्वारा विनियमन की खंड 27 के निरसन के बावजूद विक्रेता बी. के. को उपलब्ध और उपार्जित रही। इस प्रकार इस मामले के विशिष्ट तथ्यों पर यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि 22 मार्च 1939 के लेन-देन को उक्त लेन-देन के तहत विक्रेता के अधिकार पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला

नहीं कहा जा सकता है और वह अपने पक्ष में उक्त लेन-देन द्वारा कवर की गई एकड़ भूमि के हस्तांतरण से निपटने के लिए पूरी तरह से सक्षम रहा, जिसे विनियमन के तहत तत्कालीन सक्षम प्राधिकारी द्वारा विधिवत हटा दिया गया था। नतीजतन, नीचे दिए गए सभी अधिकारियों द्वारा इस लेन-देन के गुण-दोष के आधार पर दिया गया निर्णय और जिसे उच्च न्यायालय द्वारा विवादित फैसले में स्वीकार किया गया था, इस कारण से कायम नहीं रखा जा सकता है।

इन मुख्य तथ्यों में से जो मामले के अभिलेख पर निर्विवाद बने हुए हैं। [952-डी-एफ; 953-डी-जी]

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार न्यायनिर्णयः दीवानी याचिका सं 4657/1984

पटना उच्च न्यायालय के सी डब्लू जे सी सं. 1309/1976 में 08.08.84 दिनांकित निर्णय और आदेश से।

राजीव धवन, डी. आर. सिंह, अनीस अहमद, आर. के. खन्ना, ए. के. पांडे।

आर. पी. सिंह, एम. के. सिंह, ए. शरण और एम. पी. झा उपस्थित दलों के लिए।

न्यायालय का निर्णय एस. बी. मजमुदार, जे. द्वारा दिया गया था।

विशेष अवकाश पर यह अपील पटना उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा अपीलार्थियों द्वारा दायर रिट याचिका को खारिज करने के फैसले के खिलाफ निर्देशित है।

अपीलार्थियों की शिकायत को समझने के आदेश इन कार्यवाहियों की ओर ले जाने वाले कुछ प्रासंगिक तथ्यों पर ध्यान दें आवश्यक होगा। बिहार राज्य के संथाल परगना जिले के पुलिस स्टेशन मधुपुर के भीतर मौज बिल्ली की जमाबंदी संख्या 65 सीताराम सिंह, जलेश्वर सिंह, युधिष्ठिर सिंह और कस्तुरा कुमारी देवी के नामों में 'मू' के रूप में दर्ज की गई थी! रैयत का जोट आपस में उनकी उक्त जोत में 8 आना की रुचि थी। जमीन पर रहने वालों के रूप में, उन्हें रैयत कहा जाता था और उनके मुखिया को मू कहा जाता था!रैयत। मू! रैयत का जोटे संथाल परगना में भूमि कार्यकाल था। यह मू से जुड़ा हुआ था!रैयत जो एक ग्राम प्रधान के रूप में ब्रिटिश शासन के समय में भूमि राजस्व के संग्रह के लिए जिम्मेदार था। मालिक मकान मालिक को 'घाटवाल' कहा जाता था। भूमि का आवश्यक किराया मू द्वारा सौंपा जाना था!रैयत से घाटवाल तक। मू! रैयत के पास दो प्रकार के भूमि कार्यकाल थे। मू! रैयत का जोट अलग-थलग और व्यक्तिगत था। मू! रैयत जोट अविभाज्य था और उनके कार्यालय से जुड़ा हुआ था। इसे आधिकारिक जोटे कहा जाता था। यह पक्षकारों के बीच विवाद में नहीं है कि आधिकारिक ज 'ट ने 1 एकड़ 81 दशमलव को मापा जबकि मू! रैयत का जोटे, जिसे निज जोटे कहा जाता था, 71 एकड़ 71 दशमलव में

फैला हुआ था। सितार आम सिंह की मृत्यु पर उनके सबसे बड़े बेटे सरजू सिंह उपनाम भटू सिंह को मू नियुक्त किया गया। उप-मंडल अधिकारी, देउघर के न्यायालय के 1938-39 के राजस्व विविध मामले संख्या 99 में अपने पिता के स्थान पर गाँव का रैयत। उक्त नियुक्ति को संथाल परगना के उपायुक्त द्वारा विधिवत मंजूरी दी गई थी। यह अपीलार्थियों का मामला है कि चूंकि सरजू सिंह उर्फ भटू सिंह का पूरा परिवार भारी ऋणी था और उसे पैसे की आवश्यकता थी, इसलिए मू में उक्त 8 साल का ब्याज!उक्त भटू सिंह और उनके भाइयों ने 22 मार्च 1939 को बिमल कांति राय चौधरी को 38 एकड़ 9 दशमलव वाली रैयत बेच दी थी, जो निज जोटे में उनके हिस्से का प्रतिनिधित्व करती थी। अपीलार्थियों का आगे का मामला यह है कि उक्त विक्रेताओं के पास अपने सह-भागीदारों के साथ पारिवारिक व्यवस्था द्वारा मूई रैयत में अपने 8 अन्ना के हित के बदले में 38.09 एकड़ भूमि का कब्जा था। उक्त बिक्री रुपये के विचार के लिए की गई थी। 10, 000। कि उक्त खरीद के बाद श्री बिमल कांति राय चौधरी ने मू में 8 अन्ना के ब्याज के संबंध में अपना नाम बदलवा लिया!उप-मंडल अधिकारी, देवघर, दिनांक 27 नवंबर 1939 के एक आदेश द्वारा राजस्व विविध मामला संख्या 21 में उक्त मौज़ा बिल्ली का रैयत का जोई, जिसे 28 नवंबर 1939 को उपायुक्त, दुमका द्वारा विधिवत अनुमोदित किया गया था। श्री बिमल कांति राय चौधरी को बाद में उक्त मजार के 16 अन्नास सरबरकर के रूप

में नियुक्त किया गया था। उक्त आदेश जमाबंदी संख्या 65 के सभी सह-मालिकों को नोटिस जारी करने के बाद पारित किया गया था।

26 जून 1950 के बिक्री विलेख में कहा गया है कि बिमल कांति रॉय चौधरी ने मू में अपना पूरा अधिकार, शीर्षक और हिस्सेदारी बेच दी! अपीलार्थियों के पिता श्री राधा प्रसाद सिंह को रायत का जोटे के रूप में रु 17,000। विक्रेता राधा प्रसाद सिंह ने उप-विभागीय अधिकारी, देवघर के न्यायालय के राजस्व विविध मामले संख्या 40 के 1950-51 में अपना नाम बदलवा लिया। उत्परिवर्तन का उक्त आदेश सभी विरोधी पक्षों, प्रतिवादी संख्या 4 से 15 पर नोटिस की सेवा के बाद पारित किया गया था। वेंडी राधा प्रसाद सिंह अपने जीवनकाल के दौरान जमाबंदी संख्या 65 की उपरोक्त 38.09 एकड़ भूमि के कब्जे में रहे और 8 अन्ना मू के हिस्सेदार के रूप में भी काम कर रहे थे!उक्त मौज़ा के रैयत का जोट और 16 अन्नास सरबरकर। जैसे ही प्रतिवादी राधा प्रसाद सिंह के कब्जे को बाधित करने की मांग की, दंड प्रक्रिया संहिता की खंड 145 के तहत कार्यवाही शुरू की गई। उन्हें 1950 के आपराधिक मामला संख्या 567 के रूप में दर्ज किया गया था। लेकिन विद्वान उप-मंडल अधिकारी, देवघर ने 31 अगस्त 1951 के अपने आदेश द्वारा अपीलार्थियों के पिता के कब्जे की घोषणा की। उक्त आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा खारिज कर दिया गया था। राधा प्रसाद सिंह की मृत्यु के बाद, अपीलकर्ता संख्या 4 मथुरा प्रसाद सिंह को मू के रूप में नियुक्त किया गया था!उक्त जोट में

उनकी रुचि की सीमा तक रैयत की राशि 8 आना और उक्त मोज़े के 16 आना के रूप में थी। इसके बाद ही वर्ष में 4 से 15 तक के प्रत्यर्थी ने, जो कि मौज़ा के मूल सह-हिस्सेदार होने का दावा करते हैं, अपीलकर्ताओं के खिलाफ जे. आमबंदी संख्या 65 की 1 एकड़ भूमि से बेदखल करने के लिए उप-मंडल अधिकारी, देवघर के समक्ष एक आवेदन दायर किया, जिसमें आरोप लगाया गया कि उन्हें अवैध रूप से अलग कर दिया गया था। यह 1970-71 के राजस्व बेदखली मामला संख्या 67 के रूप में दर्ज किया गया था। उन्होंने संथाल परगना किरायेदारी (पूरक प्रावधान) अधिनियम, 1949 (इसके बाद 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की खंड 42 के साथ पठित खंड 20 उप-खंड (5) के प्रावधानों के तहत उपरोक्त राहत की मांग की।

पहली बार में उप-मंडल अधिकारी, देवघर ने उक्त आवेदन को खारिज कर दिया। प्रत्यर्थी संख्या 4 से 15 ने उपायुक्त 'संथाल परगना' के समक्ष अपील में मामले को उठाया। इसे अतिरिक्त उपायुक्त, दुमका की फाइल में स्थानांतरित कर दिया गया, जिन्होंने 30 सितंबर 1975 के अपने आदेश द्वारा अपील की अनुमति दी और अपीलार्थियों को बेदखल करने का आदेश दिया। अतिरिक्त उपायुक्त द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि भटू सिंह द्वारा बिमल कांति राय चौधरी के पक्ष में दिनांक 22 मार्च 1939 का मूल बिक्री लेनदेन संथाल परगना निपटान विनियमन, 1872 (जिसे इसके बाद 'विनियमन' के रूप में संदर्भित किया गया है) की खंड 27 (1) के प्रावधानों का उल्लंघन था जो प्रासंगिक समय पर लागू होता था और इसके

परिणामस्वरूप श्री बिमल कांति राय चौधरी द्वारा अपीलार्थियों के पिता के पक्ष में बाद में की गई बिक्री अधिनियम की खंड 20 (1) ए के प्रावधानों का समान रूप से उल्लंघन थी। अतः अपीलार्थी भूमि से बेदखल किए जाने के लिए उत्तरदायी थे। अपीलीय प्राधिकारी के उपरोक्त निर्णय के परिणामस्वरूप भागलपुर मंडल के आयुक्त के समक्ष राजस्व विविध अपील की गई, जिन्होंने 2 जून 1976 के आदेश द्वारा इसे खारिज कर दिया और अतिरिक्त उपायुक्त, दुमका द्वारा पारित बेदखली आदेश की पुष्टि की। इसके बाद अपीलार्थी भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत मामले को उच्च न्यायालय में ले गए। अपीलार्थियों की रिट याचिका की सुनवाई तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश एस. एस. संधवालिया, न्यायाधीश एस. अली अहमद और न्यायाधीश बी. एस. सिन्हा की पूर्ण पीठ ने की थी। पूर्ण पीठ ने उस मुख्य प्रश्न पर विचार किया जो उसके निर्णय के लिए उठाया गया था, अर्थात्, क्या प्रतिकूल कब्जे द्वारा अधिकार को पूर्ण करने के लिए 12 साल की विहित अवधि जब मूल हस्तांतरण विनियमन की खंड 27 का उल्लंघन था, 1 नवंबर 1949 से अधिनियम के प्रवर्तन की तारीख होने के कारण बंद हो जाएगी। पूर्ण पीठ ने नोट किया कि यह उस न्यायालय के भीतर मिसाल के एक गहरे टकराव से उत्पन्न होने वाला महत्वपूर्ण एकल प्रश्न था जिसने पूर्ण पीठ को उस संदर्भ को आवश्यक बना दिया था। पूर्ण पीठ ने एस. एस. संधवालिया, सी. जे. द्वारा से इस विवादास्पद प्रश्न पर भौरी लाल जैन और एक अन्य बनाम जामताड़ा के

उप-मंडल अधिकारी और अन्य, ए. आई. आर. (1973) पटना 1 के मामले में उस न्यायालय की पूर्ण पीठ के पहले के निर्णय का उल्लेख किया और सवाल उठाया कि क्या पहले के पूर्ण पीठ के निर्णय में वर्तमान मामले में उनके निर्णय के लिए उत्पन्न विवाद को शामिल किया गया था और यदि ऐसा है तो पहले के पूर्ण पीठ के निर्णय का सटीक आदेश क्या था। विवादित निर्णय में पूर्ण पीठ ने यह विचार व्यक्त किया कि 22 मार्च 1939 का पूर्ववर्ती लेन-देन विनियमन की खंड 27 का उल्लंघन था और उस तारीख से बिमल कांति राय चौधरी द्वारा से विक्रेता का कब्जा विक्रेताओं के लिए प्रतिकूल था, लेकिन जब तक यह अधिनियम 1 नवंबर 1949 से संथाल परगना पर लागू हुआ, तब तक उक्त विक्रेता बिमल कांति राय चौधरी ने प्रतिकूल कब्जे के 12 साल पूरे नहीं किए थे और परिणामस्वरूप उसके पक्ष में लेन-देन और उसके बाद 26 जून 1950 को अपीलकर्ताओं के पिता के पक्ष में उसके द्वारा किया गया लेन-देन विनियमन की खंड 27 (1) के साथ-साथ खंड 42 के साथ पठित अधिनियम की खंड 20 (1) के तहत दोनों को रद्द करने के लिए उत्तरदायी था। परिणामस्वरूप पूर्ण पीठ को अपीलार्थियों के खिलाफ निचले अधिकारियों द्वारा दिए गए निर्णय से कोई फर्क नहीं पड़ा। संधावलिया, सी. जे. ने अपने निर्णय में यह भी उल्लेख किया कि उनके निर्णय को देखते हुए वह अपीलकर्ताओं द्वारा रिट अधिकार क्षेत्र में पहली बार वैकल्पिक में आग्रह किए जाने वाले सहायक तर्कों को अनुमति देने या विज्ञापन देने के लिए अनिच्छुक थे। इस प्रकार

पूर्ण प्रतिबंध का एक सर्वसम्मत निर्णय था कि विनियमन की खंड 27 के उल्लंघन में किए गए लेन-देन के संबंध में प्रतिकूल कब्जे द्वारा अधिकार को पूरा करने के लिए 12 साल की निर्धारित अवधि 1 नवंबर 1949 से अधिनियम के प्रवर्तन की तारीख होगी। तथापि, परिस्थितियों में दी जाने वाली राहत के प्रश्न पर अधिकांश विद्वान न्यायाधीशों का विचार था कि प्रत्यर्थी संख्या 10 के साथ भूमि के निपटारे का निर्देश देने वाले विद्वान आयुक्त और अतिरिक्त उपायुक्त के आदेशों को अलग रखा जाना चाहिए, जिसका अर्थ है कि बहुमत के अनुसार भूमि को कानून के अनुसार निपटाने के लिए राज्य सरकार के अधिकार में रखा जाना चाहिए। हम इस स्तर पर ध्यान दे सकते हैं कि जिन प्रतिवादी ने एक अलग विशेष अनुमति याचिका दायर की थी, वे अपने कब्जे में भूमि की बहाली के ध्यान दें को दरकिनार करते हुए उच्च न्यायालय के बहुमत के फैसले से इस हद तक व्यथित थे कि वे इस न्यायालय को अपनी विशेष अनुमति याचिका को स्वीकार करने के लिए राजी नहीं कर सके, जो खारिज हो गई थी। इसलिए कड़ाई से बोलते हुए वे प्रतिस्पर्धा के क्षेत्र से बाहर हो जाते हैं और अब प्रतिस्पर्धा बिहार राज्य के अधिकारियों, अर्थात् प्रतिवादी संख्या 1 से 3 और बिहार राज्य, एक ओर प्रतिवादी संख्या 16 और दूसरी ओर अपीलार्थियों के बीच बनी रहती है।

डॉ. धवन, अपीलार्थियों के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता अपील के तहत पूर्ण पीठ के फैसले को लागू करने के लिए हमारे सामने विभिन्न तर्क

उठाए। उन्हें भौरी लाल जैन (उपरोक्त) के मामले में पटना उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के पहले के फैसले के खिलाफ भी गंभीर शिकायत थी। तथापि, जैसा कि इसके पश्चात् इंगित किया जाएगा, हमारे लिए भोरी लाल जैन (उपर्युक्त) के मामले में पूर्ण पीठ के निर्णय की शुद्धता पर निर्णय देना आवश्यक नहीं है, जिस पर इसके बदले में पटना उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने विवादित निर्णय में बहुत अधिक भरोसा किया था। अपीलकर्ता, जैसा कि इसके बाद प्रदर्शित किया जाएगा, एक पूरी तरह से अलग आधार पर सफल होने के हकदार हैं, जिसे अपीलकर्ताओं विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. धवन द्वारा भी हमारे विचार के लिए रखा गया था और जिसे प्रतिवादी अधिकारियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उचित रूप से चुनौती दी गई थी। इसलिए, हम इस एकांत स्थल से निपटेंगे।

इन कार्यवाही की ओर ले जाने वाले तथ्यों के उपरोक्त वर्णन से पता चलता है कि 22 मार्च 1939 को जब 8 अन्ना 'मू' में भाग लेते हैं!उक्त जोट के सह-भागीदारों में से एक, भटू सिंह ने श्री बिमल कांति रॉय चौधरी के पक्ष में रैयत को सूचित किया था, विनियमन की खंड 27 (1) मैदान में थी। विनियमन की खंड 27 (3) के साथ पठित उक्त खंड 27 (1) निम्नानुसार प्रदान की गई हैः

> "27.(1) बिक्री, उपहार, बंधक, पट्टा या किसी अन्य अनुबंध या समझौते के माध्यम से अपने स्वामित्व या

उसके किसी भी हिस्से में अपने अधिकार का कोई भी हस्तांतरण तब तक वैध नहीं होगा जब तक कि हस्तांतरण का अधिकार अधिकारों के रिकॉर्ड में दर्ज नहीं किया गया है, और फिर केवल उस हद तक जब तक ऐसा अधिकार दर्ज किया गया है।

(2).....

(3) यदि किसी भी समय उपायुक्त के ध्यान में आता है कि उप-धारा (1) का उल्लंघन करते हुए स्थानांतरण हुआ है, तो वह अपने विवेकाधिकार पर स्थानांतरितीकर्ता को बेदखल कर सकता है और या तो हस्तांतरित भूमि को रैयत या रैयत के किसी ऐसे उत्तराधिकारी को पुनर्स्थापित कर सकता है जिसने इसे हस्तांतरित किया है, या किसी परित्यक्त स्वामित्व के निपटान के लिए गाँव की प्रथा के अनुसार किसी अन्य रैयत के साथ भूमि को पुनर्स्थापित कर सकता हैः

प्रदान किया गया -

(क) कि जिस स्थानांतरिती बेदखल करने का प्रस्ताव है, वह बारह वर्षों से लगातार खेती के कब्जे में नहीं है;

(ख) कि उसे बेदखली के आदेश के खिलाफ कारण दिखाने का अवसर दिया जाए; और

(ग) कि इस खंड के तहत उपायुक्त की सभी कार्यवाहियां आयुक्त द्वारा नियंत्रण और संशोधन के अधीन होंगी।"

यह विवाद में नहीं है और अपीलार्थियों विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उचित रूप से विवादित नहीं किया गया था कि उक्त लेनदेन प्रथमदृष्टया विनियमन की खंड 27 (1) का उल्लंघन प्रतीत होता है क्योंकि भटू सिंह, जो एक रैयत थे, ने मू में अपने 8 अन्ना के हिस्से को स्थानांतरित करने की मांग की थी! रैयत जब हस्तांतरण का अधिकार जो अधिकारों के अभिलेख में दर्ज किया गया था, ने मू को सक्षम किया!रैयत को स्थानांतरित करने के लिए, यदि बिल्कुल भी हो, तो अपने सभी अधिकारों को फौज में स्थानांतरित करने के लिए जिसमें उनके अलग-थलग किए जा सकने वाले मू शामिल हैं!रैयत का जोट क्योंकि वह मू था!रैयत। लेकिन अपीलार्थियों के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता प्रस्तुत किया कि बिक्री के लेन-देन से पहले एक पारिवारिक विभाजन द्वारा मू में 8 आना का हिस्सा! 38 एकड़ और 9 दशमलव वाली रैयत भटू सिंह के हिस्से में आ गई और यह मू में उनका पूरा हिस्सा था! रैयत जिसे ए लेनदेन द्वारा हस्तांतरित किया गया था। इसलिए खंड 27 (1) का पूरी तरह से पालन किया गया। यह तर्क अपीलार्थियों विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के लिए इस सरल कारण से खुला नहीं

है कि पटना उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने आक्षेपित निर्णय में पैराग्राफ 22 में उल्लेख किया है कि उप-मंडल अधिकारी, उपायुक्त और फिर आयुक्त का एक समवर्ती निष्कर्ष था कि उक्त स्थानांतरण संपत्ति के अधिकारों के रिकॉर्ड का उल्लंघन था और परिणामस्वरूप 1872 के विनियमन III की खंड 27 (1) और उस समवर्ती निष्कर्ष को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई थी और वास्तव में प्रासंगिक रिकॉर्ड पर आधारित होना इस प्रकार पूरी तरह से अनुपलब्ध था। इसलिए, हमें इस आधार पर आगे बढ़ना चाहिए कि विक्रेता भटू सिंह द्वारा 22 मार्च 1939 को विक्रेता बिमल कांति राय चौधरी के पक्ष में बिक्री का लेन-देन विनियमन की खंड 27 (1) का उल्लंघन था।

लेकिन अब यह सवाल और उठता है कि क्षेत्र में विनियमन के प्रशासन के प्रभारी अधिकारियों द्वारा उक्त लेनदेन के साथ कैसा व्यवहार किया गया था। जहाँ तक इस पहलू का संबंध है, दुर्भाग्य से उच्च न्यायालय का ध्यान इस ओर नहीं खींचा गया है। उपरोक्त खरीद के बाद विक्रेता बिमल कांति राय चौधरी ने लेन-देन की मंजूरी प्राप्त करने और हस्तांतरित भूमि के विक्रेता के रूप में रिकॉर्ड में अपना नाम बदलने के लिए उप-मंडल अधिकारी, देवघर जिला, संथाल परगना के समक्ष एक आवेदन दायर किया। वह मामला 1939-40 के राजस्व विविध मामला संख्या 21 के रूप में दर्ज किया गया था। इस प्रकार उन्होंने इस लेन-देन के संबंध में सक्षम प्राधिकारी का ध्यान आकर्षित किया। उप-मंडल

अधिकारी ने 31 मई 1939 के अपने आदेश द्वारा संबंधित पक्षों को आपत्ति, यदि कोई हो, के लिए नोटिस जारी किए। नोटिस विधिवत दिए गए थे। मकान मालिक घाटवाल ने अपने एजेंट द्वारा से कोई आपत्ति दर्ज नहीं की, जैसा कि 1 जुलाई 1939 की कार्यवाही में उल्लेख किया गया है। इसके बाद विक्रेता फिर से उपस्थित हुआ और मामला समय-समय पर स्थगित हो गया। 19 अगस्त 1939 को मकान मालिक के एजेंट ने लेन-देन की मंजूरी पर यह कहकर आपत्ति जताई कि अन्य सह-भागीदारों द्वारा दी गई प्रतिभूति अपर्याप्त थी और खरीदार ने केवल मू! लिया था। रैयत का हित। इसलिए स्वर्गीय मू के सह-भागीदारों को नोटिस जारी किए गए!रैयत क्यों उनका हिस्सा सुरक्षा में नहीं रहेगा। इसके बाद 9 अक्टूबर 1939 को विक्रेता का एजेंट और मकान मालिक का एजेंट मौजूद था और कोई भी स्वर्गीय मू के सह-भागीदारों के लिए पेश नहीं हुआ! रैयत मामला 2 नवंबर 1939 को आदेश के लिए रखा गया था। 2 नवंबर 1939 को वेंडी उपस्थित थे। उप-मंडल अधिकारी ने मामले को सुना और 27 नवंबर 1939 को आदेश के लिए स्थगित कर दिया। 27 नवंबर 1939 को स्वर्गीय मू के सह-भागीदार!रैयत उपस्थित नहीं हुआ या आपत्ति नहीं जताई। इसलिए, उनका मानना था कि उत्परिवर्तन की अनुमति देने की आवश्यकता है। इसलिए उन्होंने मामले को आदेश के लिए उपायुक्त को सौंप दिया। और फिर 28 दिसंबर 1939 का उपायुक्त का आदेश मिलता है जिसमें लेन-देन को मंजूरी दी गई थी और विक्रेता बिमल कांति रॉय चौधरी के पक्ष में

परिवर्तन किया गया था। तदनुसार 24 जनवरी 1940 को उत्परिवर्तन किया गया और कागजातों को ठीक किया गया। जिन उपरोक्त तथ्यों को रिकॉर्ड में लाया गया है और जिन पर अधिकारियों के विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट रूप से कोई आपत्ति नहीं जता सके हैं, उनमें कोई संदेह नहीं है कि 22 मार्च 1939 को बिक्री के पहले लेनदेन की सक्षम अधिकारियों और उपायुक्त द्वारा विधिवत जांच की गई थी जिन्होंने इसे मंजूरी दी थी। 31 मई 1939 से 28 दिसंबर 1939 तक कार्यवाही जांच के दायरे में रही। इस प्रकार सात महीने तक जाँच चलती रही और अंततः उपरोक्त निर्णय दिया गया। इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि उपायुक्त के लिए, यदि ऐसी सलाह दी जाती है, तो विनियमन की खंड 27 (3) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए स्थानांतरितीकर्ता को बेदखल करने का आदेश देने का पर्याप्त अवसर था, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि अपने विवेक से उन्होंने लेन-देन पर अपनी आपत्ति को माफ कर दिया था और उसे नियमित कर दिया गया था। उक्त निष्कर्ष अपरिहार्य है लेकिन विक्रेता बिमल कांति राय चौधरी के पक्ष में उक्त परिवर्तन के लिए संबंधित समय पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा कभी भी मंजूरी नहीं दी गई होगी। इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि इस मामले के विशिष्ट तथ्यों पर 22 मार्च 1939 को बिक्री के पहले लेन-देन को विनियमन की खंड 27 (3) के तहत शक्तियों का प्रयोग करने वाले सक्षम प्राधिकारी द्वारा विधिवत अनुमोदित और मंजूरी दी गई थी। एक बार ऐसा होने के बाद विक्रेता के पक्ष में अपने अधिकार में

38.09 एकड़ में हस्तांतरित भूमि के कब्जे में रहने का अधिकार अर्जित हो गया और उक्त लेन-देन पर पर्दा गिर गया। यह स्पष्ट है कि इसके बाद उक्त विनियमन के तहत यदि यह जारी रहता तो लेन-देन को फिर से नहीं खोला जाता जब यह पाया जाता कि लेन-देन की सूचना रखने वाले उपायुक्त ने अवैध स्थानांतरितीकर्ता को बेदखल करने के लिए विनियमन की खंड 27 (3) के तहत शक्तियों का प्रयोग करना उचित नहीं समझा था। यह हो सकता है, जैसा कि अधिकारियों के विद्वान अधिवक्ता ने उचित रूप से प्रस्तुत किया कि यदि किसी दिए गए मामले में प्रासंगिक तथ्यों को उपायुक्त के ध्यान में पहले नहीं लाया गया था और यदि बाद में उन्होंने पाया था कि लेन-देन एक उचित मामले में खंड 27 की उप-खंड (1) का उल्लंघन था, तो वह खंड 27 (3) के तहत शक्ति का प्रयोग कर सकते थे, लेकिन ऐसे वर्तमान मामले के तथ्य नहीं हैं। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि सात महीने बीत गए, जिसके दौरान लेन-देन ए उप-मंडल अधिकारी की जांच के दायरे में रहा और अंततः स्वयं उपायुक्त द्वारा इसकी जांच की गई। नतीजतन, इस मामले के विशिष्ट तथ्यों पर यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि उक्त लेन-देन को सक्षम प्राधिकारी द्वारा विधिवत फ़िल्टर किया गया था, जिसने अपने विवेकाधिकार पर उन्हीं वर्षों में 28 दिसंबर 1939 को मंजूरी दी थी। तदनुसार यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि विनियमन के तहत उक्त स्थानांतरिती के स्थानांतरितीकर्ता को उसके पक्ष में अधिकार अर्जित किया गया है। आइए

अब देखते हैं कि अधिनियम के लागू होने से विक्रेता के इस अधिकार पर क्या प्रभाव पड़ा। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि यह अधिनियम 1 नवंबर 1949 से लागू हुआ। अधिनियम की खंड 3 में कहा गया है कि अनुसूची ए में उल्लिखित अधिनियम को उसके चौथे कॉलम में निर्दिष्ट सीमा तक निरस्त कर दिया जाता है। जब हम अधिनियम की अनुसूची ए की ओर मुड़ते हैं तो 1872 के विनियमन को अधिनियमों में से एक के रूप में सूचीबद्ध पाया जाता है और विनियमन के निरसन की सीमा धारा 27 और 28 के संबंध में थी। एक बार जब विनियमन की खंड 27 अधिनियम द्वारा निरस्त हो जाती है, तो सवाल उठता है कि क्या विनियमन की खंड 27 की उप-खंड (1) और (3) के संचालन के संबंध में विनियमन के तहत प्रतिशोधकर्ता बिमल कांति राय चौधरी को जो अधिकार प्राप्त हुआ था, वह उक्त खंड 27 के निरसन के बावजूद बचा लिया गया था या नहीं। अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों पर केवल एक नज़र डालने से पता चलता है कि अधिनियम में कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है जो यह निर्धारित करता है कि पारित आदेशों या विनियमन के तहत लेनदेन के संबंध में की गई कार्रवाइयों के बावजूद, और किसी भी अधिकार को सहन नहीं करना जो उक्त लेनदेन की नई जांच के तहत वहां अर्जित हो सकता है, अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत किया जा सकता है जो विनियमन की पहले निरस्त की गई खंड 27 के अनुरूप था। जब इस तरह का विपरीत इरादा अधिनियम की योजना से प्रकट नहीं होता है, तो

विनियमन की खंड 27 के निरसन का प्रभाव स्पष्ट रूप से बिहार सामान्य खंड अधिनियम, 1917 की खंड 8 के प्रावधानों को आकर्षित करता है जो निम्नानुसार हैः

> "8. निरसन का प्रभाव। - जहां कोई बिहार और उड़ीसा अधिनियम या बिहार अधिनियम अब तक किए गए या इसके बाद किए जाने वाले किसी भी अधिनियम को निरस्त करता है, तो जब तक कोई अलग इरादा प्रकट नहीं होता है, तब तक निरसन -
>
> (क) ऐसी किसी भी चीज़ को पुनर्जीवित करें जो उस समय लागू या मौजूद नहीं है जब निरसन प्रभावी होता है; या
>
> (ख) इस प्रकार निरसित किसी अधिनियम के पूर्व प्रवर्तन को प्रभावित करता है, या उसके तहत विधिवत किया गया या पीड़ित कुछ भी; या
>
> (ग) इस प्रकार निरस्त किसी अधिनियम के तहत अर्जित या उपार्जित किसी भी अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व या दायित्व को प्रभावित करता है; या
>
> (घ) इस प्रकार निरस्त किए गए किसी अधिनियम के विरुद्ध किए गए किसी अपराध के संबंध में किए गए दंड, दंड को जब्त करने को प्रभावित करता है; या

(ङ) उपरोक्त किसी भी अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व, दायित्व, दंड, ज़ब्त या सजा के संबंध में किसी भी जांच, कानूनी कार्यवाही या उपचार को प्रभावित करता है।

और ऐसी कोई जांच, कानूनी कार्यवाही या उपाय शुरू किया जा सकता है, जारी रखा जा सकता है या लागू किया जा सकता है, और ऐसा कोई जुर्माना, ज़ब्त या सजा लगाई जा सकती है जैसे कि निरसन अधिनियम पारित नहीं किया गया था।"

जैसा कि विनियमन की निरस्त खंड 27 को अधिनियम की खंड 20 (1) के रूप में फिर से अधिनियमित किया गया है और चूंकि बाद वाला अधिनियम विनियमन की निरस्त खंड 27 के तहत सक्षम अधिकारियों द्वारा दिए गए किसी भी अंतिम आदेश को समाप्त करने का कोई अलग और विपरीत इरादा नहीं दिखाता है, इसलिए अधिनियम द्वारा विनियमन की खंड 27 का निरसन उक्त निरस्त प्रावधान के तहत अर्जित, उपार्जित या उपार्जित किसी भी अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व या दायित्व को प्रभावित नहीं करेगा। परिणामस्वरूप विनियमन के तहत 22 मार्च 1939 के लेन-देन से अर्जित प्रतिरक्षा और सक्षम प्राधिकारी, अर्थात् उपायुक्त द्वारा 28 दिसंबर 1939 के अपने आदेश द्वारा दी गई मंजूरी अधिनियम द्वारा विनियमन की खंड 27 के निरसन के बावजूद विक्रेता बिमल कांति राय

चौधरी को उपलब्ध और उपार्जित रही। इस प्रकार इस मामले के विशिष्ट तथ्यों पर यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि 22 मार्च 1939 के लेन-देन को उक्त लेन-देन के तहत विक्रेता के अधिकार पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला नहीं कहा जा सकता है और वह अपने पक्ष में उक्त लेन-देन द्वारा कवर की गई एकड़ भूमि के हस्तांतरण से निपटने के लिए पूरी तरह से सक्षम रहा, जिसे विनियमन के तहत तत्कालीन सक्षम अधिकारियों द्वारा विधिवत फ़िल्टर किया गया था। नतीजतन, नीचे दिए गए सभी अधिकारियों द्वारा इस लेन-देन के गुण-दोष के आधार पर दिया गया निर्णय और जिसे उच्च न्यायालय द्वारा विवादित निर्णय में स्वीकार कर लिया गया था, इन मुख्य तथ्यों के कारण कायम नहीं रखा जा सकता है जो मामले के रिकॉर्ड में निर्विवाद रहे हैं।

दूसरा लेन-देन जो जांच के दायरे में है, वह अपीलार्थियों के पिता राधा प्रसाद सिंह के पक्ष में बिमल कांति रॉय चौधरी द्वारा 26 जून 1950 को की गई बिक्री ए है। जहाँ तक इस बिक्री विलेख का संबंध है, यह और भी मजबूत स्थिति में है। उक्त बिक्री विलेख द्वारा 38.09 एकड़ भूमि में बिमल कांति राय चौधरी का पूरा अधिकार, स्वामित्व और ब्याज राधा प्रसाद सिंह को दे दिया गया। नतीजतन, इसे एक स्थानांतरण नहीं कहा जा सकता है जो अधिनियम की खंड 20 द्वारा प्रभावित था। इसके सुसंगत प्रावधान निम्नानुसार हैं:

"20. रैयत के अधिकारों में स्थानांतरण - (1) रैयत द्वारा उसकी हिस्सेदारी या उसके किसी हिस्से का कोई हस्तांतरण, बिक्री, उपहार बंधक, वसीयत, पट्टा या किसी अन्य अनुबंध या समझौते द्वारा व्यक्त या निहित, तब तक वैध नहीं होगा, जब तक कि हस्तांतरण का अधिकार अधिकारों के रिकॉर्ड में दर्ज नहीं किया गया है, और फिर केवल उस हद तक जब तक ऐसा अधिकार दर्ज किया गया है। बशर्ते कि किसी उपखंड में उत्पाद शुल्क की दुकान की स्थापना या उसे जारी रखने के उद्देश्य से रैयती भूमि का पट्टा, उपायुक्त की पूर्व लिखित अनुमति के साथ, एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए, एक रैयत द्वारा वैध रूप से दिया या नवीनीकृत किया जा सकता हैःबशर्ते कि जहां किसी अभिलिखित संथाल रैयत द्वारा किसी बहन और बेटी को उपहार देने की संथाल कानून के तहत अनुमति है, वहां ऐसी रैयत, उपायुक्त की पूर्व लिखित अनुमति से, वैध रूप से ऐसा उपहार दे सकती है। बशर्ते कि एक प्राचीन रैयत, उपायुक्त की पूर्व लिखित अनुमति से, अपनी भूमि के संबंध में अपनी विधवा माँ या अपनी पत्नी को उसकी मृत्यु के बाद उसके भरण-पोषण के लिए अनुदान दे सकता है जो उसकी हिस्सेदारी के आधे क्षेत्र से अधिक नहीं है।

(2).....

(3).....

(4).....

(5) यदि किसी भी समय उपायुक्त के ध्यान में आता है कि उप-धारा (1) या (2) का उल्लंघन करते हुए कोई स्थानांतरिती हुआ है, वह अपने विवेकाधिकार पर स्थानांतरितीकर्ता को बेदखल कर सकता है और या तो हस्तांतरित भूमि को रैयत या रैयत के किसी ऐसे उत्तराधिकारी को वापस कर सकता है जिसने इसे हस्तांतरित किया है, या किसी परित्यक्त स्वामित्व के निपटारे के लिए गाँव की प्रथा के अनुसार किसी अन्य रैयत के साथ भूमि को फिर से बसाने के लिए कह सकता हैः

बशर्ते कि जिस स्थानांतरिती बेदखल करने का प्रस्ताव है, उसे बेदखली के आदेश के खिलाफ कारण दिखाने का अवसर दिया जाएगा।"

यह तुरंत स्पष्ट हो जाएगा कि अधिनियम की खंड 20 (1) विनियमन की खंड 27 (1) के पहले के प्रावधानों की योजना के समानांतर चलती है।

बिमल कांति राय चौधरी एक रैयत थे जिन्हें मू के रूप में पहचाना जाता था!विनियमन के तहत सक्षम अधिकारियों द्वारा रैयत। उक्त भूमि में उनका पूरा अधिकार, अधिकार और हित, जो एक अन्य भूमि थी, अपीलार्थियों के पिता के पक्ष में उक्त दूसरे लेन-देन के तहत हस्तांतरित किया गया था। हस्तांतरण का अधिकार अधिकारों के अभिलेख में विधिवत दर्ज किया गया था और स्थानान्तरण को स्थानांतरित करने की आवश्यकता थी यदि उसका पूरा अधिकार, शीर्षक और मू) रैयत में रुचि हो। बिमल कांति राय चौधरी ने 26 जून 1950 के लेन-देन द्वारा अपीलार्थियों के पिता के पक्ष में ठीक यही किया था। इसलिए, इस लेन-देन ने अधिनियम की खंड 20 (1) के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं किया। यदि ऐसा है, तो यह पूरी तरह से उक्त प्रावधान के अग्रदूतों के भीतर रहा और इसे किसी भी दृष्टिकोण से अवैध या अमान्य नहीं माना जा सकता था। नतीजतन, अधिकारियों के लिए 26 जून 1950 को बिक्री के इस बाद के लेन-देन के संबंध में अधिनियम की खंड 42 के साथ पठित खंड 20 (5) को लागू करने का कोई अवसर नहीं रहेगा। वास्तव में प्रतिवादी के लिए निष्पक्षता में यह प्रस्तुत किया जाना चाहिए कि नीचे दिए गए सभी अधिकारियों के साथ-साथ उच्च न्यायालय ने विवादित निर्णय द्वारा 22 मार्च 1939 को बिक्री के पहले लेनदेन की अयोग्यता पर विचार किया है और उस प्रकाश में उन्होंने दूसरे लेनदेन को परिणामी लेनदेन के रूप में रद्द कर दिया है। एक बार जब दोनों बिक्री के बीच की सांठगांठ समाप्त हो

जाती है और पहले के लेनदेन को किसी भी कोण से दोषपूर्ण नहीं पाया जा सकता है, तो 26 जून 1950 के दूसरे बिक्री लेनदेन के संबंध में प्रत्यर्थी-प्राधिकरणों के लिए अधिनियम की खंड 20 (1) के प्रावधानों को उप-खंड (5) और खंड 42 के साथ पढ़ने का कोई अवसर नहीं रहेगा। एक बार जब यह निष्कर्ष निकल जाता है तो परिणाम स्पष्ट हो जाता है। इन विचित्र तथ्यों पर इस निष्कर्ष से कोई बच नहीं सकता है कि मृत विक्रेता राधा प्रसाद सिंह के उत्तराधिकारी के रूप में अपीलकर्ताओं का अधिकार वैध रूप से प्राप्त किया गया था और एक वैध अधिकार जो 38.09 एकड़ भूमि में उनके पिता राधा को दिया गया था।

प्रसाद सिंह ने 26 जून 1950 को दूसरे बिक्री लेन-देन के तहत उत्तराधिकार के नियमों द्वारा कानूनी रूप से अपीलार्थियों को प्रेषित कर दिया। नतीजतन इन तथ्यों पर अपीलार्थियों के खिलाफ अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत अधिकारियों द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती थी। इसलिए केवल इस संक्षिप्त आधार पर ही अपील की अनुमति दी जानी चाहिए। हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमारे उपरोक्त निर्णय को देखते हुए हमने भौरी लाल जैन (उपरोक्त) के मामले में उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय की शुद्धता के साथ-साथ विनियमन की खंड 27 (1) या अधिनियम की खंड 20 (1) का उल्लंघन करने वाले क्षेत्र में भूमि के अमान्य लेनदेन के तहत विक्रेता के प्रतिकूल कब्जे के संबंध में पूर्ण पीठ के विवादित फैसले पर विचार करना उचित नहीं समझा है। इसलिए इस

सवाल को खुला रखा गया है। इसी तरह हमने प्रत्यर्थी अधिकारियों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रचार किए गए व्यापक प्रश्न में जाना भी उचित नहीं समझा है कि भले ही विनियमन या अधिनियम के तहत अधिकारियों द्वारा उत्परिवर्तन किए गए हों, यदि बाद के तथ्यों को उपायुक्त के ध्यान में लाया जा रहा है और एक बार जब उपायुक्त के लिए अधिनियम की खंड 21 (5) या विनियमन की खंड 27 (1) के तहत शक्तियों का प्रयोग करने का कोई अवसर या संभावना नहीं थी, तो ऐसी शक्ति का उपयोग उन परिस्थितियों में बाद में किया जा सकता है। हम उस प्रश्न को भी खुला छोड़ते हैं क्योंकि हमारे लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम विवादित दो लेन-देनों के गुण-दोष पर दिए गए निर्णय को देखते हुए उसी पर उच्चारण करें जैसा कि पहले देखा गया था।

परिणामस्वरूप अपील की अनुमति दी जाती है। उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया जाता है और खारिज कर दिया जाता है। इसी तरह अतिरिक्त उपायुक्त, दुमका द्वारा दिनांक 30 सितंबर 1975 को दिए गए निर्णय के साथ-साथ आयुक्त द्वारा दिनांक 2 जून 1976 को दिए गए निर्णय को भी रद्द कर दिया जाता है और अधिनियम की खंड 42 के साथ पठित खंड 20 उप-खंड (5) के तहत प्रतिवादी संख्या 4 से 15 द्वारा दायर आवेदन को खारिज करने का आदेश दिया जाता है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागत के बारे में आदेश होगा।

आई. एम. ए.

अपील को अनुमति दी गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी मोहम्मद आरिफ (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।